‘न च विधि-प्रतिषेधौ मिथो भिन्नौ प्रतिभासेते, उभयदोषानुषंगात् । ततो विधि-प्रतिषेधा-त्मकं वस्तु प्रमाणसमधिगम्यमिति नास्त्येकान्तविषयं विज्ञानम् । न चानुमानमेकान्तविषयं येन तस्य नयत्वमुच्यते, तस्याप्युक्तन्यायतोऽनेकान्तविषयत्वात् । ततः प्रमाणं न नयः, किंतु प्रमाणपरिच्छिन्नवस्तुनः एकदेशे वस्तुत्वार्प्पणा नय इति सिध्दम् ।’

‘प्रमाण-नयैर्वस्त्वधिगम इत्यनेन सूत्रेणापि नेदं व्याख्यानं विघटते । कुतः ? यतः प्रमाणनयाभ्यामुत्पन्नवाक्येऽ प्युपचारतः प्रमाण-नयौ, ताभ्यामुत्पन्नबोधौ विधि-प्रतिषेधात्मक-वस्तुविषयत्वात् । प्रमाणतामादधानावपि कार्ये कारणोपचारतः प्रमाण-नयावित्यस्मिन् सूत्रे परिगृहीतौ । नयवाक्यादुत्पन्नबोधः प्रमाणमेव न नय, इत्येतस्य ज्ञापनार्थं ताभ्यां वस्त्वधिगम इति भण्यते । अथवा प्रधानीकृतबोधः पुरूषः प्रमाणम्, अप्रधानीकृतबोधो नयः। वस्त्वधिगम एव क्रियते नावास्तुन इति प्रतिपत्तव्यमन्यथा नयस्य प्रमाणांतःप्रवेशतोऽभावप्रसंगात् ।’

< लिये असमर्थ है । और प्रमाणमें विधि व प्रतिषेध दोनों परस्पर भिन्न भी नहीं प्रतिभासित होते, क्योंकि, ऐसा होनेपर होनेपर दोनों दोषोंका प्रसंग आता है । इस कारण विधि-प्रतिषेध रूप वस्तु प्रमाणका विषय है, अतएव ज्ञान एकान्तको विषय करनेवाला नहीं है । >

< अनुमान भी एकान्तको विषय नहीं करता जिससे कि उसे नय कहा जा सके, क्योंकि, वह भी उपर्युक्त न्यायसे अनेकान्तको विषय करनेवाला है । इसलिये प्रमाण नय नहीं है, किन्तु प्रमाणसे जानी हुई वस्तुके एक देशमें वस्तुत्वकी विवक्षाका नाम नय है, यह सिध्द हुआ । >

< ‘प्रमाण और नयसे वस्तुका ज्ञान होता है’, इस सूत्र द्वारा भी वह व्याख्यान विरूध्द नहीं पडता । इसका कारण यह कि प्रमाण और नयसे उत्पन्न वाक्य भी उपचारसे प्रमाण और नय हैं, उन दोनोंसे उत्पन्न उभय बोध विधि-प्रतिषेधात्मक वस्तुको विषय करनेके कारण प्रमाणताको धारण करते हुए भी कार्यमें कारणका उपचार करनेसे प्रमाण व नय हैं, इस प्रकार सूत्रमें ग्रहण किये गये हैं । नयवाक्यसे उत्पन्न बोध प्रमाण ही है, नय नहीं है; इस बातके ज्ञापनार्थ ‘उन दोनोंसे वस्तुका ज्ञान होता है’, ऐसा कहा जाता है । अथवा, बोधको प्रधान करनेवाला पुरूष प्रमाण और उसे अप्रधान करनेवाला नय है । वस्तुका ही अधिगम किया जाता है, अवस्तुका नहीं,

ऐसा जानना चाहिये; क्योंकि, इसके विना प्रमाणके भीतर प्रवेश होनेसे नयके अभावका प्रसंग आवेगा ।>

कदिअणियोगद्दारे णयपरूवणा

ʻप्रमाणपरिगृहीतवस्तुनि यो व्यवहार एकान्तरूप: स नयनिबन्धन: । तत: सकलो व्यवहारो नयाधीन: । प्रमाणाधीनव्यवहारानुपलंभतस्तदस्तित्वे संशयानस्य प्रमाणानिबन्ध-नव्यवहारप्रदर्शनार्थ सकलादेश: प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन: इति प्रतिपादनान्नानेनापीदं व्याख्यानं विघटते । क: सकलादेश: ? स्यादस्तीत्यादि । कुत: ? प्रमाणनिबन्धनत्वात् स्याच्छब्देन सूचिताषेषाप्रधानीभूतधर्मत्वात् (१ का: सकलादेश: ? स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्य: स्यादस्ति च नास्ति च स्यादस्ति चावक्तव्यश्च स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च घट इति सप्तापि सकलादेश: । कथमेतेषां संप्तानां सुनयानां सकलादेशत्वम ? न, एकधर्मप्रधानभावेन साकल्येन वस्तुन: प्रतिपादकत्वात् । जयध. १, पृ. २०१. तत्र यदा यौगपद्यं तदा सकलादेश: । स एव प्रमाणमित्युच्यते, सकलादेश: प्रमाणाधीन इति वचनात् । xxxx कथं सकलादेश: ? एकगुणमुखेनाशेषवस्तुरूपसंग्रहात् सकलादेश: । त.रा. ४, ४२, १६, १८.) । को विकलादेश: ? अस्तीत्यादि: (२ को विकलादेश: ? अस्त्येव नास्त्येव अवक्तव्य एव अस्ति नास्त्येव अस्त्यवक्तव्य एव नास्त्यवक्तव्य एव अस्ति नास्त्यवक्तव्य एव घट इति विकलादेश: । जयध. १, पृ. २०३. यदा तु क्रमस्तदा विकलादेश: । स एव नय इति व्यपदिश्यते, विकलादेशो नयाधीन इति वचनात् । xxxx अथ कथं विकलादेश:? निरंशस्यापि गुणभेदादंशकल्पना विकलादेश: । त.रा. ४, ४२, १७, २९.) । कुत: ? नयोत्पन्नत्वात् । तथा पूज्यपादभट्टारकैरप्यभाणि सामान्यनय-ʼ

< प्रमाणसे गृहीत वस्तुमें जो एकान्त रूप व्यवहार होता है वह नयनिमित्तक है । इसीलिये समस्त व्यवहार नयके आधीन हैं । प्रमाणके आधीन व्यवहारके न पाये जानेसे उसके अस्तित्वमें संशय करनेवालेके लिये प्रमाणनिमित्तक व्यवहारके दिखलानेके लिये ‘सकलादेश प्रमाणके आधीन है और विकलादेश नयके आधीन है’ ऐसा प्रतिपादन करनेसे इस कारण भी यह व्याख्यान विघटित नहीं होता ।>

ʻशंकाʼ< सकलादेश किसे कहते हैं ? >

ʻसमाधान-< ‘स्यादस्ति’ अर्थात् ‘कथंचित् है’ इत्यादि सात भंगोंका नाम सकलादेश है; क्योंकि, प्रमाणनिमित्तक होनेसे इनकेद्वारा ‘स्यात्’ शब्दसे समस्त अप्रधानभूत धर्मोंकी सूचना की जाती है । >

ʻशंका-< विकलादेश किसे कहते है ? >

ʻसमाधान-< ‘अस्ति’ अर्थात् ‘है’ इत्यादि सात वाक्योंका नाम विकलादेश है, क्योंकि, वे नयोंसे उत्पन्न हैं । तथा पूज्यपाद भट्टारकने भी सामान्य नयका लक्षण यही >

छक्खंडागमे वेयणाखंडं

ʻलक्षणामिदमेव । तद्यथा - प्रमाणप्रकाशितार्थविशेषप्ररूपको नयः इति । प्रकर्षेण मानं प्रमाणम्, सकलादेशीत्यर्थः। तेन प्रकाशितानां प्रमाणपरिगृहीतानामित्यर्थः । तेषामर्था-नामस्तित्व-नास्तित्व-नित्यानित्यत्वाद्यनन्तात्मकानां जीवादीनां ये विशेषाः पर्यायाः तेषां प्रकर्षेण रूपकः प्ररूपकः निरूध्ददोषानुषंगद्वारेणेत्यर्थः (१ त.रा. १, ३३, १. तत्र ‘सकलादेशीत्यर्थः’ इत्येतस्य स्थाने 'सकलादेश इत्यर्थः’, इति पाठः, ‘तेन प्रकाशितानाम्’ अतोऽग्रे तत्र ‘न प्रमाणाभासपरिगृहीतानामित्यर्थः’ इत्याधिकः पाठः। जयध. १, पृ. २१०.)। अबोधरूपस्याभिप्रायस्य कथं निरूध्ददोषानुषंगध्दारेण पर्यायप्ररूपकत्वम् ? नैष दोषः, द्रव्यपर्यायाभिप्रायोत्था-पितवचनयोः द्रव्य-पर्यायनिरूपणात्मकयोः अभिप्रायवतः पुरूषस्य या नयत्वाभ्युपगमतो दोषाभावात् अन्यथोक्तदोषानुषंगात् । तथा प्रभाचन्द्रभट्टारकैरप्यभाणिप्रमाणव्य-पाश्रयपरिणामविकल्प-वशीकृतार्थविशेषप्ररूपणप्रवणः प्रणिधिर्यः स नय इति । प्रमाणव्यपाश्रयस्तत्परिणामविकल्पवशीकृतानां अर्थविशेषाणां प्ररूपणे प्रवणः प्रणिधानं प्रणिधिः प्रयोगो व्यवहारात्मा प्रयोक्ता वा स नयः (२ जयध. १, पृ. २१०.)। स एष याथात्म्योपलब्धिनिमित्तत्त्वाद्-

< कहा है । वह इस प्रकार है - प्रमाणसे प्रकाशित जीवादिक पदार्थोंकी पर्यायोंका प्ररूपण करनेवाला नय है । इसीको स्पष्ट करते हैं - प्रकर्षसे अर्थात् संशयादिसे रहित वस्तुका ज्ञान प्रमाण है, अभिप्राय यह कि जो समस्त धर्मोंको विषय करनेवाला हो वह प्रमाण है । उससे प्रकाशित अर्थात् प्रमाणसे गृहीत उन अस्तित्व-नास्तित्व व नित्यत्व-अनित्यत्वादि अनन्त धर्मात्मक

जीवादिक पदार्थोंके जो विशेष अर्थात् पर्यायें हैं उनका प्रकर्षसे अर्थात् दोषोंके सम्बन्धसे रहित होकर निरूपण करनेवाला नय है । >

ʿशंका- < अबोधरूप अभिप्राय संशयादि दोषोंसे रहित होकर जीवादिक पदार्थोंकी पर्यायोंका निरूपक कैसे हो सकता है ? >

ʿसमाधान- < यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, द्रव्य और पर्यायके अभिप्रायसें उत्पन्न द्रव्यपर्यायके निरूपणात्मक वचनोंको अथवा अभिप्रायवान् पुरूषको नय माननेसे कोई दोष नहीं आता, ऐसा न माननेपर उपर्युक्त दोषका प्रसंग आता है । >

< तथा प्रभाचन्द्र भट्टारकने भी कहा है - प्रमाणके आश्रित परिणामभेदोंसे वशीकृत पदार्थविशेषोंसे प्ररूपणमें समर्थ जो प्रयोग होता है वह नय है । उसीको स्पष्ट करते हैं - जो प्रमाणके आश्रित है तथा उसके आश्रयसे होनेवाले ज्ञाताके भिन्न भिन्न अभिप्रायोंके आधीन हुए पदार्थविशेषोंके प्ररूपणमें समर्थ है ऐसे प्रणिधान अर्थात् प्रयोग अथवा व्यवहार स्वरूप प्रयोक्ताका नाम नय है । वह यह नय पदार्थोंके यथार्थ परिज्ञानका निमित्त होनेसे मोक्षका कारण है । यहां >

कदिअणियोगद्दारे णयपरूवणा

ʿभावानां श्रेयोऽपदेश: श्रेयसो मोक्षस्यापदेश: कारणम् । कुत: ? याथात्म्योपलब्धिनिमि-त्तभावात् (१ जयध.१,पृ. २११.) । तथा सारसंग्रहेऽप्युक्तं पूज्यपादै- अनन्तपर्यायात्मकस्य वस्तुनोऽन्यतमप- र्यायाधिगमे कर्तव्ये जात्यहेत्वपेक्षो निरवद्यप्रयोगो नय (२ जयध.१, पृ.२१०.) इति । भवतु नाम अभिप्रायवत: प्रयोक्तुर्नयव्यपदेश:, न प्रयोगस्य:, तत्र नित्यत्वानित्यत्वाद्यभिप्रायाणामभावादिति ? न, नयतस्समुत्पन्नप्रयोगस्यापि प्रयोक्तुरभिप्रायप्ररूपकस्य कार्ये कारणोपचारतो नयत्वसिध्दे: । तथा समन्तमद्रस्वामिनाप्युक्तम्-

< स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नय: (३ आ.मी. १०६.) ।। ५५ ।। इति >

ʿस्याद्वाद: प्रमाणं कारणे कार्योपचारात्, तेन प्रविभक्ता: प्रकाशिता: अर्था: ते स्याद्वादप्रविभक्तार्था:, तेषां विशेषा पर्याया:, जात्यहेत्ववष्टंभबलेन तेषां व्यंजक:, प्ररूपक: य: स नय इति ।

ʿस एवंविधो नयो द्विविध: द्रव्यार्थिक: पर्यायार्थिकश्चेति (४ तस्य द्वौ मूलभेदौ द्रव्यास्तिक: पर्यायास्तिक इति । त.रा.१, ३३, १.) । द्रवति द्रोष्यत्यदुद्रव-त्तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम् (५

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं । दवियं तं भण्णंते अण्णण्णभूदं तु सत्तादो ।। पंचा. ९.) । एतेन तद्भाव-सादृश्यलक्षणसामान्ययोर्द्वयोरपि ग्रहऱ

< श्रेयस् शब्दका अर्थ मोक्ष और अपदेश शब्दका अर्थ कारण है । नयको जो मोक्षका कारण बतलाया है उसका हेतु पदार्थोंकी यथार्थोपलाब्धिनिमित्तत्ता है । >

< तथा सारसंग्रहमें भी पूज्यपाद स्वामीने कहा है - अनन्त पर्याय स्वरूप वस्तुकी किसी एक पर्यायका ज्ञान करते समय श्रेष्ठ हेतुकी अपेक्षा करनेवाला निर्दोष प्रयोग नय कहा जाता है । >

ʻशंकाऱ< अभिप्राययुक्त प्रयोगकर्ताकी नय संज्ञा भले ही हो, किन्तु प्रयोगकी वह संज्ञा नहीं हो सकती; क्योंकि, उसमें नित्यत्व आदि अभिप्रायोंका अभाव है ? >

ʻसमाधानऱ< नहीं, क्योंकि, प्रयोगकर्ताकेअभिप्रायको प्रगट करनेवाले नयजन्य प्रयोगकेभी कार्यमें कारणका उपचार करनेसे नयपना सिध्द है । >

< तथा समन्तभद्र स्वामीने भी कहा है - स्याद्वादसे प्रकाशित पदार्थोंकी पर्यायोंको प्रगट करनेवाला नय है । इस कारिकाकेउत्तरार्धमें प्रयुक्त 'स्याद्वाद' शब्दका अर्थ कारणमें कार्यका उपचार करनेसे प्रमाण होता है । उस प्रमाणसे प्रविभक्त अर्थात् प्रकाशित जो पदार्थ है उनके विशेष अर्थात् पर्यायोंका जो श्रेष्ठ हेतुकेबलसे व्यञ्जक अर्थात् प्ररूपण करता हो वह नय है । >

< उपर्युक्त स्वरूपवाला वह नय दो प्रकार है -- द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक । जो उन उन पर्ययोंको प्राप्त होता है, प्राप्त होगा अथवा प्राप्त हुआ है वह द्रव्य है । इस निरूक्तिसे तद्भाव सामान्य और सादृश्य सामान्य दोनोंका ही ग्रहण किया गया है, >

ʻणम् वस्तुनः उभयथापि द्रवणोपलंभात् ॽ

ʻसाम्प्रतं द्रव्यविकल्प उच्यते-सदित्येकंवस्तु, सर्वस्य सतोऽविशेषात् (१ सत्ता इत्येकंद्रव्यम् । जयध. १ पृ. २११.) । न ततो व्यतिरिक्तं किंचिंत्, असत्वप्रसंगात् । अथवा सर्व द्विविधं वस्तु जीवाजीवभावाभ्यां विधि-निषेधाभ्यां मूर्तामूर्तत्वाभ्यां अस्तिकायानस्तिकायभेदाभ्यां वा (२ द्विविधं वा द्रव्यं जीवाजीवद्रव्यभेदेन । जयध. १ पृ. २१३.) । कोऽनस्ति-कायः ? कालः, तस्य प्रदेशप्रचयाभावात् । कुतस्तस्यास्तित्वम् ? प्रचयस्य सप्रतिपक्षत्वान्यथानुपपत्तेः । अथवा, सर्व वस्तु त्रिविधं द्रव्य-गुण-पर्यायैः (३ त्रिविधं वा द्रव्यं भव्याभव्यानुभयभेदेन । जयध. १ पृ. २१४.) ।

चतुर्विधं वा बध्द-मुक्त-बन्ध-मोक्षकारणै: (४ संसार्यसंसारिभेदेन जीवद्रव्यं द्विविधम्, अजीवद्रव्यं पुद्‌गलापुद्‌गलभेदेन द्विविधम्, एवं चतुर्विधं वा द्रव्यम् । जयध. १ पृ. २१४.)। तन्न बध्द: संसारिजीव: । मुक्त: कर्मकलंकाड्‌-कच्युत:। एकान्तबुध्दयघ्यवसित: सर्वो ब्राह्यार्थ: मिथ्याविरति-प्रमादकषाय-योगाश्च बंधकारणम् । कथम् ? एतेषामेकत्वं प्रत्यभेदाद् । अनेकान्तबुद्‌ध्यध्यवसित: सर्वो बाह्यार्थ:؍

< क्योंकि, वस्तुकेदोनों प्रकारसे भी उन पर्यायोंको प्राप्त करना पाया जाता है । >

< अब द्रव्यकेभेदको कहते हैं- ‘सत्’ इस प्रकारसे वस्तु एक है, क्योंकि, सबकेसत्‌की अपेक्षा कोई भेद नहीं है; कारण कि सत्‌से भिन्न कुछ नहीं है, क्योंकि, वैसा होनेपर उसकेअसत् होनेका प्रसंग आवेगा । अथवा सब वस्तु जीवभाव-अजीवभाव, विधि-निषेध, मूर्त अमूर्त या अस्तिकाय-अनस्तिकायकेभेदसे दो प्रकार है । >

ʿशंका؍< अनस्तिकाय कौन है ? >

ʿसमाधान؍< काल अनस्तिकाय हैं, क्योंकि, उसकेप्रदेशप्रचय नहीं हैं । >

ʿशंका؍< तो फिर कालका अस्तित्व कैसे है ? >

ʿसमाधान؍< चूंकि अस्तित्वकेविना प्रचयकेसप्रतिपक्षता बन नहीं सकती अत: उसका अस्तित्व सिध्द है । >

< अथवा, सब वस्तु द्रव्य, गुण व पर्यायसे तीन प्रकार है । अथवा वह वस्तु बध्द, मुक्त, बन्धकारण और मोक्षकारणकी अपेक्षा चार प्रकार है । उनमें बध्द संसारी जीव है । कर्मरूपी कलंकसे रहित मुक्त जीव है । एकान्त बुध्दिसे निश्चित सब बाह्य पदार्थ और मिथ्यात्व, अविरति प्रमाद, कषाय व योग, ये बन्धकारण हैं; क्योंकि, बन्धकारणपनेकी अपेक्षा उनकी एकताकेप्रति कोई भेद नहीं है । अनेकान्त बुध्दिसे निश्चित सब बाह्य पदार्थ और सम्यक्त्व, अविरति, >

ʿसम्यक्त्व-विरत्यप्रमादाकषायायोगाश्च मोक्षकारणम् । सर्व (१ जीवद्रव्यं त्रिविधं भव्याभव्यानुभयभेदेन, अजीवद्रव्यं द्विविधं मूर्तामूर्तभेदेन, एवं पंचविधं वा द्रव्यम् । जीव-पुद्‌गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदेन षड्‌विधं वा । जीवाजीवास्त्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षभेदेन सप्तविधं वा । जीवाजीव-कर्मास्त्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षभेदेनाष्टविधं वा । जीवाजीव-पुण्य-पापास्त्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षभेदेन नवविधं वा । एक-द्वि-त्रि-चतु:-पंचेन्द्रिय-पुद्‌गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदेन

दशविधं वा । पृथिव्यप्तेजो-वायु-वनस्पति-त्रस-पुदगल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदेनैकादशविधं वा । पृथिव्यप्तेजो-वायु-वनस्पति-समनस्कामनस्क-त्रस-पुद्‌गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदेन द्वादशविधं वा । जीवद्रव्यं त्रिविधं भव्याभव्यानुभयभेदेन, पुद्‌गलद्रव्यं षड्‌विधं बादरबादर-बादर-बादरसूक्ष्म-सूक्ष्मबादर-सूक्ष्मसूक्ष्मं चेति । xxx शेषद्रव्याणि चत्वारि धर्माधर्म-कालाकाशभेदेन । एवं त्रयोदशविधं वा द्रव्यम्‌ । एवमेतेन क्रमेण जीवाजीवद्रव्याणां भेद: कर्तव्य: यावदन्त्यविकल्प इति । जयध. १. पृ. २१४-१५.) वस्तु पंचविधं वा औदयि-कौपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभैदे: । सर्वं वस्तु षड्‌विधं वा जीव-पुद्‌गल-धर्माधर्म-कालाकाशभैदे: । सर्वं वस्तु सप्तविधं वा बध्द-मुक्तजीव-पुद्‌गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदै: । सर्व वस्तु अष्टविधं वा भव्याभव्य-मुक्तजीव-पुद्‌गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदै: । सर्वं वस्तु नवविधं वा जीवाजीव-पुण्य-पापास्त्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षभेदै: । सर्व वस्तु दशविधं वा एक-द्वि-त्रि-चतु:-पंचेन्द्रियजीव-पुद्‌गल-धर्माधर्म-कालाकाशभैदे: । सर्व वस्त्वेकादशविधं वा पृथिव्यप्तेजा-वायु-वनस्पति-त्रसजीव-पुद्‌गलधर्माधर्म-कालाकाशभेदै: । एकमेकाद्येकोत्तरक्रमेण बहिरंगान्तरंगधर्मिणौ विपाट्येते यावदविभागप्रतिच्छेदं प्राप्ताविति । एष सर्वोऽप्यनन्तविकल्प: संग्रहप्रस्तार: नित्य:

< अप्रमाद, अकषाय एवं अयोग मोक्षकारण हैं । >

< अथवा सब वस्तु औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और परिणामिकके भेदसे पांच प्रकार है । अथवा सब वस्तु जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे छह प्रकार है । अथवा सब वस्तु बध्द जीव, मुक्त जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे सात प्रकार है । अथवा सब वस्तु भव्य, अभव्य, मुक्त जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म काल और आकाशके भेदसे आठ प्रकार है । अथवा सब वस्तु जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्षके भेदसे नौ प्रकार है । अथवा सब वस्तु एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव, त्रीन्द्रिय जीव, चतुरिन्द्रिय जीव, पंचेन्द्रिय जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे दस प्रकार है । अथवा सब वस्तु पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक त्रस जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे ग्यारह प्रकार है । इस प्रकार एकको लेकर एक अधिक क्रमसे बहिरंग व अंतरंग धर्मियोंका विभाग करना चाहिये जब तक कि अविभागप्रतिच्छेदको प्राप्त नहीं होते हैं । इस प्रकार सभी अनन्त भेद रूप संग्रहप्रस्तार नित्य व शब्दभेदसे अभिन्न होता हुआ द्रव्य कहा जाता है । द्रव्य >

[1]वाचकभेदेनाभिन्नः द्रव्यमित्त्युच्यते। द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः (१ ष. खं. पु. १, पृ. ८३. द्रव्यमस्तीति मतिरस्य द्रव्यभवनमेव नातोऽन्ये भावविकाराः नाप्यभावस्तद्व्यतिरेकेणानुपलब्धेरिति द्रव्यास्तिकः। xxx अथवा, द्रव्यमेवार्थोऽस्य न गुण-कर्मणी तदवस्थारूपादिति द्रव्यार्थिकः। xxx अथवा, अर्यते गम्यते निष्पाद्यत इत्यर्थः कार्यम्, द्रवति गच्छतीति द्रव्यं कारणम् । द्रव्यमेवार्थोऽस्य कारणमेव कार्य नार्थान्तरम्; न च कार्य-कारणयोः कश्चिद् रूपभेदः तदुभयमेकाकारमेव पर्वागुलिद्रव्यवदिति द्रव्यार्थिकः । xxx अथवा, अर्थनमर्थः प्रयोजनम्, द्रव्यमेवार्थोऽस्य प्रत्ययाभिधानानुप्रवृत्तिलिंगदर्शनस्य निह्वोतुमशक्यत्वादिति द्रव्यार्थिकः। त.रा. १, ३३, १. एतद्द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः। तद्भावलक्षणसामान्येनाभिन्नं सादृश्यलक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्नं च वस्त्वभ्युपगच्छन् द्रव्यार्थिक इति यावत् । जयध. १ पृ. २१६.)। एष एव सदादिरविभागप्रतिच्छेदपर्यन्तः संग्रहप्रस्तारः क्षणिकत्वेन विवक्षितः वाचकभेदेन च भेदमापन्नः विशेषप्रस्तारः पर्यायः। पर्यायः अर्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः (२ ष.खं. पु. ८४. पर्याय एवास्तीति मतिरस्य जन्मादिभावविकारमात्रमेव भवनम्, न ततोऽन्यद्द्रव्यमस्ति, तद्व्यतिरेकेणानुपलब्धेरिति पर्यायास्तिकः । xxx पर्याय एवार्थोऽस्य रूपाद्युत्क्षेपणादिलक्षणो न ततोऽन्यद् द्रव्यमिति पर्यायार्थिकः। परि समन्तादायः, पर्यायः, पर्याय एवार्थः कार्यमस्य न द्रव्यमतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् स एवैकःकार्य-कारणव्यपदेशभागिति पर्यायार्थिकः। त.रा.१, ३३, १. परि भेदं ऋजुसूत्रवचनविच्छेदं एति गच्छतीति पर्यायः, स पर्यायः अर्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः सादृश्यलक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्नं च द्रव्यार्थिकाशेषविषयं ऋजूसूत्रवचनविच्छेदेन पाटयन् पर्यायार्थिक इत्यवगन्तव्यः। जयध. १ पृ. २१७.)। तत्र योऽसौ द्रव्यार्थिकनयः स त्रिविधो नैगम-संग्रह-व्यवहारभेदेन । तत्र सत्तादिना यः सर्वस्य पर्याय-कलंकाभावेन अद्वैतत्वमध्यवस्यति शुध्दद्रव्यार्थिकः स संग्रहः (३ तत्र द्रव्यार्थिकनयस्त्रिविधः संग्रहो व्यवहारो नैगमश्चेति । तत्र शुध्दद्रव्यार्थिकः पर्यायकलंकरहितः बहुभेदः संग्रहः। जयध. १, पृ. २१९.) । अत्रोपयोगिनी गाथा-

< ही है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसका वह द्रव्यार्थिक नय है । सत्को आदि लेकर अविभागप्रति-च्छेद पर्यन्त यही संग्रहप्रस्तार क्षणिक रूपसे विवक्षित व शब्दभेदसे भेदको प्राप्त होता हुआ

विशेषप्रस्तार या पर्याय है । पर्याय ही है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसका वह पर्यायार्थिक नय है । उनमें जो वह द्रव्यार्थिक नय है वह नैगम, संग्रह और व्यवहारके भेदसे तीन प्रकार है । इनमें जो सत्ता आदिकी अपेक्षासे पर्याय रूप कलंकका अभाव होनेके कारण सबकी एकताको विषय करता है वह शुध्द द्रव्यार्थिक संग्रह है । यहां उपयोगी गाथा- >

कदिअणियोगद्दारे णयपरूवणा

< सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पाय-धुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का (१ पंचा.८.) ।। ५६ ।।

>

'शेषद्वयाद्यनन्तविकल्पसंग्रहप्रस्तारावलम्बन: पर्याय-कलंकांकिततया अशुध्दद्रव्या-र्थिक: व्यवहारनय: (२ (अशुध्द-) द्रव्यार्थिक: पर्यायकलंकांकितद्रव्यविषय: व्यवहार: । जयध. १. पृ. २१९.) । यदस्ति न तद् द्वयमतिलंध्य वर्त्तते इति संग्रह-व्यवहारयो: परस्परविभिन्नोभयविषयालम्बनो नैगमनय:, शब्द-शील-कर्म-कार्य-कारणाधाराधेयभूत-भविष्यद्वर्तमान-मेयोन्मेयादिकमाश्रित्य स्थितोपचारप्रभव इति यावत् (३ ष.खं.पु. १ पृ. ८४ यदस्ति न तद्द्वयमतिलंघ्य वर्तत इति नैकगमो नैगम: शब्द-शील-कर्म-कार्य-कारणाधाराधेय-सहचार-मान-मेयोन्मेय-भूत-भविष्यद्-वर्तमानादिकमाश्रित्य स्थितोपचारविषय: । जयध. १, पृ. २२१.)।

'पर्यायार्थिको नयश्चतुर्विध: ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढैवंभूतभेदेन । तत्र अपूर्वा-

< अस्तित्व रूप सत्ता उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य रूप तीन लक्षणोंसे युक्त समस्त वस्तुविस्तारके सादृश्यकी सूचक होनेसे एक है; उत्पादादि त्रिलक्षण स्वरूप 'सत्' इस प्रकारके शब्दव्यवहार एवं सत् इस प्रकारके प्रत्ययके भी पाये जानेसे समस्त पदार्थोंमें स्थित है; विश्व अर्थात् समस्त वस्तुविस्तारके त्रिलक्षण रूप स्वभावोंसे सहित होनेके कारण सविश्व रूप है, अनन्त पर्यायोंसे सहित है; भंग (व्यय), उत्पाद व ध्रौव्य स्वरूप है, तथा अपनी प्रतिपक्षभूत असत्तासे संयुक्त है ।। ५६ ।। >

< शेष दो आदि अनन्त विकल्प रूप संग्रहप्रस्तारका अवलम्बन करनेवाला व्यवहार नय पर्याय रूप कलंकसे युक्त होनेसे अशुध्द द्रव्यार्थिक नय है । >

< जो है वह भेद व अभेद दोनोंका उल्लंघन कर नहीं रहता, इस प्रकार संग्रह और व्यवहार नयोंके परस्पर भिन्न (भेदाभेद) दो विषयोंकां अवलम्बन करनेवाला नैगम नय है ।

अभिप्राय यह कि जो शब्द, शील, कर्म, कार्य, कारण, आधार, आधेय, भूत, भविष्यत्, वर्तमान, मेय व उन्मेयादिकका आश्रयकर स्थित उपचारसे उत्पन्न होनेवाला है वह नैगम नय कहा जाता है ।>

< पर्यायार्थिक नय ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवम्भूतके भेदसे चार प्रकार है । इनमें जो तीन कालविषयक अपूर्व पर्यायोंको छोडकर वर्तमान कालविषयक पर्यायोंका >

छक्खंडागमे वेयणाखंडं

ʻस्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानकालविषयमादत्ते यः स ऋजुसूत्रः (१ ऋजु प्रगुणं सूत्रयति सूचयतीति ऋजुसूत्रः । अस्य विषयः पच्यमानः पक्वः । पक्वस्तु स्यात्पच्यमानः स्यादुपरतपाक इति । पच्यमान इति वर्तमानः, पक्व इत्यतीतः, तयोरेकस्मिन्नवरोधो विरूध्द इति चेत-न, पाकप्रारम्भ-प्रथमक्षणे निष्पन्नांशेन पक्वत्वाविरोधात । न च तत्र पाकस्य सर्वांशैरनिष्पत्तिरेव, चरमावस्थायामपि पाकनिष्पत्तेरभाव-प्रसंगात् । ततः पच्यमान एव पक्व इति सिध्दम् । तावन्मात्रक्रियाफलनिष्पत्त्युपरमापेक्षया स एव पक्वः स्यादुपरतपाक इति, अन्त्यपाकापेक्षया निष्पत्तेरभावात् एव पच्यमान इति सिध्दम । एवं क्रियामाणकृत-भुज्यमानभुक्त-बध्यमानबध्द-सिध्यत्सिध्दादयो योज्याः । जयध.१, पृ. २२३. सूत्रपातवद् ऋजुसूत्रः । यथा ऋजुः सूत्रपातस्तथा ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तंत्रयति ऋजुसूत्रः । सर्वस्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानविषकालमादत्ते xxx अस्य विषयः पच्यमानः पक्वः । पक्वस्तु स्यात्पच्यमानः स्यादुपरतपाक इति । असदेतद्विरोधात् (?) । पच्यमान इति वर्तमान, पक्व इत्यतीतः, तयोरेकस्मिन्नवरोधो विरोधीति ? नैष दोषः, पचनस्यादावविभागसमये कश्चिदंशो निर्वृत्तो वा न वा ? यदि न निर्वृत्तस्तद्द्वितीयादिष्वप्यनिवृत्तेः पाकाभावः स्यात् । ततोऽभिनिर्वृत्तेस्तदपेक्षया पच्यमानः पक्वः, इतरथा हि समयस्य त्रैविध्यप्रसंगः । स एवोदनः पच्यमानः पक्वः स्यात्पच्यमान इत्युच्चते पक्तुरभिप्रायस्यानिवृत्तेः । पक्तुर्हि सुविशद-सुस्विन्नौदने पक्वाभिप्रायः । स्यादुपरतपाक इति चोच्यते, कस्यचित् पक्तुस्तावतैव कृतार्थत्वात् । एवं क्रियमाणकृत-भुज्यमानभुक्त-बध्यमानबध्द-सिध्यत्सिध्दादयो योज्याः । त.रा.१,३३,७.) । कोऽत्र वर्तमा-नकालः ? आरम्भात्प्रभृत्या उपरमादेष वर्तमानकालः । एष चानेकप्रकारः, अर्थ-व्यंजनपर्यायस्थितेकविधत्वात् । तत्र तावच्छुध्दऋजुसूत्रविषयः प्रदर्श्यते-पच्यमानः पक्वः । पक्वस्तु स्यात्पच्यमान स्यादुपरतपाक इति । पच्यमान इति वर्तमानः पक्व इति अतीतः, तयोरेकस्मिन्नवरोधो विरूध्द इति चेन्न,

पचनप्रारम्भप्रथमसमये पाकांशा-निष्पत्तौ द्वितीयादिक्षणेषु प्रथमक्षण इव पाकांशनिष्पत्त्यभावतः पाकस्य साकल्येनो७

< ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्र नय है । >

ʿशंका७< यहां वर्तमान कालका क्या स्वरूप है ? >

ʿसमाधान७< विवक्षित पर्यायके प्रारम्भकालसे लेकर उसका अन्त होने तक जो काल है, यह वर्तमान काल है । >

< अर्थ और व्यञ्जन पर्यायोंकी स्थितिके अनेक प्रकार होनेसे यह काल अनेक प्रकार है । उसमें पहले शुध्द ऋजुसूत्र नयके विषयको दिखलाते हैं - इस नयका विषय पच्यमान-पक्वं है । पक्वका अर्थ कथंचित् पकनेवाला और कथंचित् पका हुआ है । >

ʿशंका७< चूंकि 'पच्यमान' यह पचन क्रियाके चालू रहने अर्थात् वर्तमान कालको और 'पक्व' यह उसके पूर्ण होने अर्थात् भूत कालको सूचित करता है अतः उन दोनोंका एकमें रखना विरूध्द है ? >

ʿसमाधान७< नहीं, क्योंकि, पचन क्रियाके प्रारम्भ होनेके प्रथम समयमें पाकां-शकी सिध्दि न होनेपर प्रथम क्षणके समान द्वितीयादि समयोंमें पाकांशकी सिध्दिका अभाव >

कदिअणियोगद्दारे णयपरूवणा

ʿत्पत्तेरभावप्रसंगात् । एवं द्वितीयादिक्षणेष्वपि पाकनिष्पत्तिर्वक्तव्या । ततः पच्यमानः पक्व इति सिध्दम्, नान्यथा; समयस्य त्रैविध्यप्रसंगात् । स एवौदनः पक्वः स्यात्पच्यमान इति चोच्यते, सुविशद-सुस्विन्नौदने पक्तुः पक्वाभिप्रायात् । तावन्मात्रक्रियाफल-निष्पत्त्युपरमापेक्षया स एव पक्वः ओदनः स्यादुपरतपाक इति कथ्यते । एवं क्रियमाणकृत-भुज्यमानभुक्त-बध्यमानबध्द-सिध्दयत्सिध्दादयो योज्याः। (१ त.रा. १, ३३, ७. जयध. १, पृ. २२४.) तथा यदैव धान्यानि मिमीते तदैव प्रस्थः, प्रतिष्ठन्त्यस्मिन्निति प्रथव्यपदेशात् । न कुम्भकारोऽस्ति । कथम् ? उच्यते- शिवकादिपर्यायं करोति न तस्य तद्व्यपदेशः, शिवकादीनां कुम्भव्यपदेशाभा-वात् । नापि कुम्भपर्यायं करोति, स्वावयवेभ्य एव तस्य निष्पत्तेः । नोभयत एकस्यो७

< होनेसे पूर्णतया पाककी उत्पत्तिके अभावका प्रसंग आवेगा । इसी प्रकार द्वितीयादि क्षणोंमें भी पाककी उत्पत्ति कहना चाहिये । इसीलिये पच्यमान ओदन कुछ पके हुए अंशकी अपेक्षा पक्व है, यह सिध्द होता है; क्योंकि, ऐसा न माननेसे समयके तीन प्रकार माननेका प्रसंग आवेगा । वही

पका हुआ ओदन कथंचित् ‘पच्यमान’ ऐसा कहा जाता है, क्योंकि, विशद रूपसे पूर्णतया पके हुए ओदनमें (जो अभी सिध्द नहीं हुआ है) पाचकका ‘पक्व’ से अभिप्राय है । उतने मात्र अर्थात् कुछ ओदनांशमें पचन क्रियाके फलकी उत्पत्तिके विराम होनेकी अपेक्षा वही ओदन उपरतपाक अर्थात् कथंचित् पका हुआ कहा जाता है । इसी प्रकार क्रियमाण-कृत, भुज्यमान-भुक्त, बध्यमान-बध्द और सिध्दयत्-सिध्द इत्यादि ऋजुसूत्र नयके विषय जानना चाहिये । >

< तथा जब धान्योंको मापता है तभी इस नयकी दृष्टिमें प्रस्थ (अनाज नापनेका पात्रविशेष) हो सकता है, क्योंकि, जिसमें धन्यादि स्थित रहते हैं उसे निरूक्तिके अनुसार प्रस्थ कहा जाता है । >

< इस नयकी दृष्टिमें कुम्भकार संज्ञा भी नहीं बनती । कैसे ? ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि जो शिवक आदि पर्यायको करता है उसकी कुम्भकार संज्ञा नहीं बन सकती, क्योंकि, शिवक-स्थासादिका कुम्भ नाम नहीं है । कुम्भ पर्यायको भी वह नहीं करता, क्योंकि, उसकी उत्पत्ति अपने अवययोंसे ही होती है । और दोसे एककी उत्पत्ति सम्भव >

‘त्पत्तिः, युगपदेकत्रस्वभावद्वयविरोधात् अवयवेष्वेव व्याप्रियमाणपुरूषोपलम्भाच्च । (१ त.रा. १, ३३, ७. जयध. १, पृ. २२५.) स्थितप्रश्ने च कुतोऽद्यागच्छसीति, न कुतश्चिदित्ययं मन्यते, तत्कालक्रियापरिणामा-भावात् । यमेवाकाशदेशमवगाढुं समर्थः आत्मपरिणामं वा तत्रैवास्य वसतिः । (२ त.रा. १, ३३, ७. जयध. १, पृ. २२६.) न कृष्णः काकोऽस्य नयस्य । कथम् ? यः कृष्ण स कृष्णात्मक एव, न काकात्मकः; भ्रमरादीनामपि काकताप्रसंगात् । काकश्च काकात्मको, न कृष्णात्मकः; शुक्लकाकाभाव-प्रसंगात् तत्पित्तास्थि-रूधिरादीनामपि कार्ष्ण्यप्रसंगात् । अस्तु चेन्न, तेषां पीत-शुक्ल-रक्तादिवर्णोपलम्भात् । नच तेभ्यो व्यतिरिक्तः काकोऽस्ति, तद्व्यतिरेकेण काकानुप-लम्भात् । ततोऽत्र न विशेषण-विशेष्यभाव इति सिध्दम् । न चास्य नयस्य सामानाधिक-रण्यमप्यस्ति, एकस्य पर्यायेभय अनन्यत्वात् । न च पर्यायव्यतिरिक्तं नित्यमेकमनवयवं

< नहीं हैं, क्योंकि, एक साथ एकमें दो स्वभावोंका विरोध हैं, तथा पुरूष अवयवोंमें ही व्यापार करनेवाला पाया जाता है । >

< 'आज तुम कहांसे आ रहे हो' ? ऐसा किसी स्थित व्यक्तिसे पूछनेपर 'कहींसे नहीं आ रहा हूं,' ऐसा यह ऋजुसूत्र नय मानता है, क्योंकि, उस समय आगमन क्रिया रूप परिणामका अभाव है । जिस आकाशप्रदेशको अथवा आत्मपरिणामको अवगाहनेकेलिये वह समर्थ है वहींपर इसका निवास है । >

< 'कृष्ण काक' यह इस नयका विषय नहीं है । कारण कि जो कृष्ण है वह कृष्णात्मक ही है, काक स्वरूप नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर भ्रमर आदिकोंकेभी काक होनेका प्रसंग आता है । इसी प्रकार काक भी काकात्मक ही है, कृष्णात्मक नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर सफेद काकके अभावका प्रसंग आता है, तथा उसके पित्त (शरीरस्थ धातुविशेष), हड्डी व रूधिर आदिकेभी कृष्णताका प्रसंग आता है । यदि कहा जाय कि वे भी कृष्ण होते हैं, सो ऐसा नहीं है, क्योंकि, क्रमश: उनका पीला, सफेद व लाल रंग पाया जाता है । और इन धातुओंसे भिन्न काक है नहीं, क्योंकि, उनको छोडकर काक पाया नहीं जाता । इसीलिये इस नयकी दृष्टिमें विशेषण-विशेष्यभाव नहीं है, यह सिध्द हुआ । >

< इस नयकी दृष्टिमें सामानाधिकरण्य (एक आधारमें समान रूपसे रहना) भी नहीं है, क्योंकि, एक द्रव्य पर्यायोंसे भिन्न नहीं है । तथा पर्यायोंको छोडकर नित्य, एक, >

'सकलावयवव्याप्युपलभ्यते । ततो न द्रव्यं पर्याया एव विविक्तशक्तय: सन्ति । न तेषामेकमधिकरणं स्वस्मिन्नवस्थितत्वात् । किंच, (१ जयध. १, पृ. २२६.) न विनाशोऽन्यतो जायते, तस्य जातिहेतुत्वात् । अत्रोपयोगी श्लोक:-

< जातिरेव हि भावानां निरोधे हेतुरिष्यते । >
< यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत् पश्चात् स केन व: ।। ५७ ।। >

'न च भाव: अभावस्य हेतु:, घटादपि खरविषाणोत्पत्तिप्रसंगात् । किंच न वस्तु परतो विनश्यति, परसन्निधानाभावे तस्याविनाशप्रसंगात् । अस्तु चेन्न, अक्षणिकेऽर्थ- क्रियाविरोधात् । किंच, (२ त.रा. १, ३३, ७.) न पलालो दह्यते, पलालाग्निसम्बन्धसमनन्तरमेव पलालस्य नैरात्म्यानुपलम्भात् । न द्वितीयादिक्षणेषु पलालस्य नैरात्म्यकृदग्निसम्बन्ध:, तस्य तत्कार्यत्वप्रसंगात् । न पलालावयवी दह्यते, तस्यासत्वात् । नावयवा दह्यन्ते, निरवयवत्वत:-

< निरवयव और समस्त अवयवोंमें रहनेवाला द्रव्य पाया नहीं जाता । अत द्रव्य कोई अन्य वस्तु नहीं है, भिन्न भिन्न शक्तियुक्त पर्यायें ही है । तथा उनका एक अधिकरण नहीं है; क्योंकि, वे अपनेमें स्थित हैं ।>

< और भी, इस नयकी अपेक्षा विनाश किसी अन्य पदार्थके निमित्तसे नहीं होता, क्योंकि, विनाश जातिहेतुक होता है । यहां उपयोगी श्लोक- >

< पदार्थोंके विनाशमें जाति कारण मानी जाती है, क्योंकि, जो पदार्थ उत्पन्न होते ही नष्ट नहीं होता तो पश्चात् आपके मतमें किसकेद्वारा नष्ट होगा ? अर्थात् किसीकेद्वारा नष्ट नहीं हो सकेगा ।। ५७ ।।>

< दूसरे, भाव अभावका हेतु नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा माननेपर घटसे भी गधेके सींगोंके उत्पन्न होनेका प्रसंग आवेगा । तथा वस्तु परकेनिमित्तसे नष्ट नहीं होती, क्योंकि, वैसा होनेपर परकी समीपताकेअभावमें उसकेअविनाशका प्रसंग आता है । यदि कहा जाय कि नाश न भी हो, सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, नित्य होनेपर अर्थक्रियाका विरोध आता है ।>

< इस नयकी दृष्टिमें पलाल (पुआल) का दाह नहीं होता, क्योंकि, पलाल और अग्निके समबन्धकेअनन्तर ही पलालकी निरात्मता अर्थात् शून्यता नहीं पायी जाती । द्वितीयादि क्षणोंमें पलालकी निरात्मताको करनेवाला अग्निका सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि, उसकेहोनेपर पलालकी निरात्मताको उसकेकार्य होनेका प्रसंग आता है । पलाल अवयवीका दाह नहीं होता, क्योंकि, अवयवीकी (आपकेमतमें) सत्ता ही नहीं है । न अवयव जलते हैं, क्योंकि, स्वयं निरवयव होनेसे उनका भी असत्व है । यदि कहा जाय कि पलालकी उत्पत्तिकेक्षणमें ही >

छक्खंडागमे वेयणाखंडं

ʻस्तेषामप्यसत्वात् । न पलालोत्पत्तिक्षण एवाग्निसम्बन्धस्तस्यानुत्पत्तिप्रसंगात् । नोत्तरक्षणे, असत्तासम्बन्धविरोधात् । किंच य: पलालो न सह दह्यते, तत्राग्निसम्बन्धजनितातिशयान्तरा-भावत्, भावे वा न स पलाल:, (१ जयध. १, पृ. २३०.) प्राप्ताऽन्यस्वरूपत्वात् । (२ त.रा. १, ३३, ८. जयध. १, पृ. २३५.) न शुक्ल: कृष्णीभवति, उभयोर्भिन्नकालावस्थितत्वात् प्रत्युत्पन्नविषये निवृत्तपर्यायानभिसम्बन्धात् । एवमृजुसूत्रनयस्वरूपनिरूपणं कृतम् ।ʼ

ʻशपत्यर्थमाह्वयति प्रत्यायतीति शब्द: । अयन्नय: लिंग-संख्या-काल-कारक-पुरूषोपग्रहव्यभिचारनिवृत्तिपर: (३ त.रा.१, ३३,९.) । लिंगव्यभिचारस्तावत् स्त्रीलिंगे

पुल्लिंगाभिधानम्-तारका स्वातिरिति । पुल्लिंगे स्त्र्यभिधानम्- अवगमो विद्येति । स्त्रीत्वे नपुंसकाभिधा-नम् - वीणा आतोद्यमिति । नपुंसकेस्त्र्यभिधानम्-आयुध शक्तिरिति । पुल्लिंगे नपुंस-

< अग्निका सम्बन्ध हो जाता है, अत:वह जल सकता है; सो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर अग्निका सम्बन्ध होनेसे वह उत्पन्न ही न हो सकेगा । यदि उत्पत्तिके उत्तरक्षणमें अग्निका सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, उत्पत्तिके द्वितीय क्षणमें पलालकी सत्ता नष्ट हो जानेसे असत्ताके साथ अग्निसम्बन्धका विरोध है । दूसरे, जो पलाल है वह नहीं जलता है । क्योंकि, उसमें अग्निसम्बन्ध जनित अन्य अतिशय विशेषका अभाव है । अथवा यदि उसमें अन्य अतिशय विशेष का सद्भाव है, ऐसा स्वीकार करनेपर भी तो वह पलाल नहीं है, क्योंकि, उसने अन्य स्वरूप प्राप्त कर लिया है । >

< इस नयकी अपेक्षा 'शुक्ल कृष्ण होता है', ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, शुक्ल और कृष्ण दोनों पर्यायें भिन्न भिन्न अपने अपने कालमें रहनेवाली हैं । अत: वर्तमान उत्पन्न होनेवाली कृष्ण पर्यायमें नष्ट हुई पूर्वक्षणवाली शुक्ल पर्यायका सम्बन्ध नहीं बन सकता । इस प्रकार ऋजुसूत्र नयकेस्वरूपका निरूपण किया । >

< जो 'शपति' अर्थात् अर्थको बुलाता है या उसका ज्ञान कराता है वह शब्द नय है । यह नय लिंग, वचन, काल, कारक, पुरूष और उपग्रहकेव्यभिचारको दूर करनेवाला है । इनमें पहिले लिंगव्याभिचार कहा जाता है- स्त्रीलिंगमें पुल्लिंगका कथन करना लिंगव्यभिचार है । जैसे इ 'तारका स्वाति:' यहां स्त्रीलिंग तारका शब्दके साथ पुल्लिंग स्वाति शब्दका प्रयोग किया गया है, अत: यह लिंगव्यभिचार है । पुल्लिंगमें स्त्रीलिंगका कथन करना । जैसे इ 'अवगमो विद्या' यहां पुल्लिंग अवगम शब्दके साथ स्त्रीलिंग विद्या शब्दका प्रयोग है । स्त्रीलिंगमें नपुंसक लिंगका कथन करना । जैसे इ 'वीणा आतोद्यम्' यहां स्त्रीलिंग वीणाकेलिये नपुंसकलिंग आतोद्य शब्दका प्रयोग किया गया है । नपुंसकलिंगमें स्त्रीलिंगका कथन करना । जैसे - 'आयुधं शक्ति:' यहां नपुंसकलिंग आयुधकेलिये स्त्रीलिंग शक्ति शब्दका प्रयोग किया गया है । पुल्लिं- >

ʿकाभिधानम् - पटो वस्त्रमिति । नपुंसके पुल्लिंगाभिधानम् - द्रव्यं परशुरिति (१ प.खं. पु. १. पृ. ८७.)⅃

ʿसंख्याव्यभिचार: । एकत्वे द्वित्वम् - नक्षत्रं पुनर्वसू इति । एकत्वे बहुत्वम्-नक्षत्रं शतभिषज: इति । द्वित्वे एकत्वम् - गोदौ (२ ष. खं. पु. १, पृ. ८७. जयध. १ पृ. २३६.) ग्राम इति । द्वित्ये बहुत्वम् - पुनर्वसू पंचतारका इति । बहुत्वे एकत्वम् - आम्रा: वनमिति । बहुत्वे द्वित्वम् - देव - मनुष्या: उभौ राशी इति (२ ष. खं. पु. १, पृ. ८७. जयध. १ पृ. २३६.)⅃

ʿकालव्यभिचार - विश्वदृश्यास्य पुत्रो जनितेति भविष्यदर्थे भूतप्रयोग: । भावि

< गमें नपुंसकलिंगका कथन करना । जैसे - 'पटो वस्त्रम्' यहां पुल्लिंग 'पट:' के साथ 'वस्त्रम्' ऐसे नपुंसकलिंग वस्त्र शब्दका प्रयोग किया गया है । नपुंसकलिंगमें पुल्लिंगका कथन करना । जैसे - 'द्रव्यं परशु:' यहां नपुंसकलिंग द्रव्य शब्दके साथ पुल्लिंग परशु शब्दका प्रयोग किया गया हैं । (यह सब लिंगव्यभिचार है।) >

< संख्याव्यभिचार कहा जाता है । एकवचनके स्थानमें द्विवचनका प्रयोग करना । जैसे - 'नक्षत्रं पुनर्वसू' यहां एक वचन 'नक्षत्रम्' के साथ 'पुनर्वसू' ऐसे द्विवचनका प्रयोग किया गया है । एक वचनके स्थानमें बहुवचनका प्रयोग, जैसे - 'नक्षत्रं शतभिषज:' यहां एक वचन 'नक्षत्रम्' के साथ 'शतभिषज:' ऐसे बहुवचनका प्रयोग किया गया है । द्विवचनके स्थानमें एकवचनका प्रयोग, जैसे - 'गोदौ ग्राम:' यहां 'गोदौ' द्विवचनके साथ 'ग्राम:' ऐसे एकवचनका प्रयोग किया गया है। द्विवचनके स्थानमें बहुवचनका प्रयोग, जैसे - 'पुनर्वसू पंचतारका:' यहां 'पुनर्वसू' इस द्विवचनके साथ 'पंचतारका:' ऐसे बहुवचनका प्रयोग किया गया है । बहुवचनके स्थानमें एकवचनका प्रयोग, जैसे - 'आम्रा: वनम्' यहां 'आम्रा:' बहुवचनके साथ 'वनम्' ऐसे एकवचनका प्रयोग किया गया है । बहुवचनके स्थानमें द्विवचनका प्रयोग, जैसे - 'देव-मनुष्य: उभौ राशी' अर्थात् देव एवं मनुष्य ये दो राशियां हैं, यहां 'देव-मनुष्या:' इस प्रकार बहुवचनके साथ 'उभौ राशी' ऐसे द्विवचनका प्रयोग किया गया है । (यह संख्याव्यभिचार है।) >

< कालव्यभिचार - विवक्षित किसी एक कालके स्थानमें दूसरे कालका प्रयोग करना कालव्यभिचार है । जैसे - ‘विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता’ अर्थात् जिसने विश्वको देख लिया है ऐसा इसके पुत्र लोगा । यहां भविष्यकालीन ‘जनिता’ क्रियाके साथ भूतकालीन क्रियाके द्योतक ‘विश्वदृश्वा’ कर्तृपदका प्रयोग किया गया है । ‘भावि कृत्यमासीत्’ आगे होनेवाला कार्य हो गया । यहां भूतकालीन आसीत् क्रियाके साथ भविष्यकालीन क्रियाके>

ʻकृत्यमासीदिति भूतार्थे भविष्यत्प्रयोगः। साधनव्यभिचारः- ग्राममधिशेते इति । पुरूषव्यभिचारः- एहि, मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति (१ हासे मन्योक्तौ युस्मन्मन्येऽस्मत्त्वेकम् । मन्योक्तौ-मन्यवाचिं, हासे-प्रहासे, गम्यमाने युष्मद् भवति; मन्ये मन्यतेस्त्वस्मदेकं च । एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पिता । शब्दा. चं. १, २, १८२.)। उप-ग्रहव्यभिचारः- रमते विरमति, तिष्ठति संतिष्ठते, विशति निविशते; इत्येवमादयो व्यभिचारा न युक्ताः, अन्यार्थस्य अन्यार्थेन सम्बन्धाभावात् । तस्माद्यथालिंगं यथासंख्यं यथासाधनानि न न्याय्यमभिधानम् (२ ष.खं. पु. १, पृ. ८७, जयध. १ पृ. २३६.)। एवं शब्दनयस्वरूपमभिहितम् ׀

< द्योतक भावि पदका कृत्य के विशेषण रूपसे प्रयोग किया गया है । (इसीलिये उक्त दोनों कालव्यभिचारके उदाहरण हैं ।) >

< एक कारकके स्थानमें दूसरे कारकका प्रयोग करना साधनव्यभिचार है । जैसे-ग्राम-मधिशेते अर्थात् गांवमें सोता है । यहां ग्रामे अधिकरण कारकके स्थानमें ग्रामम् ऐसे कर्मकारकका प्रयोग किया गया है, अतः यह साधनव्यभिचार है । >

< एक पुरूषके स्थानमें दूसरे पुरुषका प्रयोग करनेका नाम पुरूषव्यभिचार है । जैसे एहि, मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पिता अर्थात् आओ, तुम समझते हो कि मैं रथसे जाऊंगा, पर तुम नहीं जाओगे, तुम्हारे पिता चले गये । यहां मन्यसे मध्यम पुरुषके स्थानमें मन्ये इस प्रकार उत्तम पुरूषका प्रयोग और यास्यमि इस उत्तम पुरूषके स्थानमें यास्यसि ऐसे मध्यम पुरूषका प्रयोग किया गया है । अत एव यह पुरूषव्यभिचार है । >

< उपसर्गके सम्बन्धसे परस्मैपदके स्थानमें आत्मनेपद और आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपदका प्रयोग करना उपग्रहव्यभिचार है । जैसे - रमते ऐसे आत्मनेपदके स्थानमें वि उपसर्गके सम्बन्धसे विरमति इस प्रकार परस्मैपदका प्रयोग; तिष्ठति परस्मैपदके स्थानमें सम उपसर्गके संयोगसे संतिष्ठते ऐसे आत्मनेपदका प्रयोग; और विशति परस्मैपदके स्थानमें नि उपसर्गके योगसे निविशते इस प्रकार आत्मनेपदका प्रयोग किया गया है । यह उपग्रह व्यभिचार है ।>

< पूर्वोक्त लिंगादिव्यभिचारके अतिरिक्त और भी जो व्यभिचार हैं वे सब शब्दनयकी दृष्टिमें उचित नहीं हैं, क्योंकि, अन्य अर्थवाले शब्दका अन्य अर्थवाले शब्दके साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता । इस कारण जैसा लिंग हो, जैसा वचन हो और जैसा साधन आदि हो वैसा व्यभिचारसे रहित प्रयोग करना चाहिये यह इस नयका मन्तव्य है । इस प्रकार शब्दनयका स्वरूप कहा गया है ।>

कदिअणियोगद्दारे णयपरूवणा

ʻनानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः। इन्दनादिन्द्रः शकनाच्छक्रः पूर्द्दारणात्पुरन्दर इत्येकस्यार्थस्यैकेन गतत्वादन्वर्थस्य नाम्नस्तत्र सामर्थ्याभावाद्वा पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थक इति नानार्थरोहणात्समभिरूढः (१ स. सि. १, ३३. त. रा. १, ३३, १०. ष. खं. पु. १, पृ. ८९. जयध. १, पृ. २३९.)। (२ जयध. १ पृ. २४०.) अथ स्यान्न शब्दो वस्तुधर्म्मः, तस्य ततो भेदात् । नाभेदः, वाच्यवाचकभावाद् भिन्नेन्द्रियग्राह्यत्वाद भिन्नसाधनत्वाद् भिन्नार्थक्रिया-कारित्वादुपायोपेयरूपत्वात् त्वगिन्द्रियग्राह्याग्राह्यत्वात् क्षुर-मोदकशब्दोच्चारणे मुखस्य पाटन-पूरणप्रसंगाद् (३ जयध. १. पृ. २३२.) वैयधिकरण्यात् । न च विशेष्याद् भिन्नं विशेषणमव्यव-स्थापत्तेः। ततो न वाचकभेदाद्वाच्यभेद इति ? नैष दोषः, भिन्नानामपि वस्त्राभरणा-दीनां विशेषणत्वोपलम्भात् । न चैकत्वे व्यवच्छेद्य - व्यवच्छेदकभावो युज्यते, विरो-

< शब्दभेदसे जो नाना अर्थोमें रूढ हो, अर्थात् जो शब्दके भेदसे अर्थके भेदको स्वीकार करता हो वह समभिरूढनय है । जैसे - इन्दन अर्थात् ऐश्वर्योपभोग रूप क्रियाके संयोगसे इन्द्र, सकना क्रियाके संयोगसे शक्र और पुरोंके विभाग करने रूप क्रियाके संयोगसे पुरन्दर, इस प्रकार

एक अर्थका एक शब्दसे परिज्ञान होनेसे अथवा अन्यार्थक शब्दका उस अर्थमें सामर्थ्य न होनेसे पर्यायशब्दोंका प्रयोग व्यर्थ है । इसलिये नाना अर्थोंमें रूढ होना इस नयकी दृष्टिमें उचित है ।>

ʿशंका७< शब्द वस्तुका धर्म नहीं है, क्योंकि, उसका वस्तुसे भेद है । और यदि उसका वस्तुसे अभेद माना जाय तो यह सम्भव नहीं है, क्योंकि, वस्तु वाच्य है और शब्द वाचक है; वस्तु भिन्न इन्द्रियसे ग्राह्य है और शब्द भिन्न इन्द्रियसे ग्राह्य है; वस्तुके कारण भिन्न हैं और शब्दके कारण भिन्न हैं; वस्तुकी अर्थक्रिया भिन्न है और शब्दकी अर्थक्रिया भिन्न है; शब्द उपाय है और वस्तु उपेय है, तथा वस्तु त्वगिन्द्रयसे ग्राह्य है और शब्द त्वगिन्द्रियसे ग्राह्य नहीं है, इसके अतिरिक्त उन दोनोंमें अभेद माननेपर छुरा और मोदक शब्दोंका उच्चारण करनेपर क्रमसे मुखके कटने और पूर्ण होनेका प्रसंग आता है; अतः दोनोंमें सामानाधिकरण्य न होनेसे अभेद नहीं हो सकता । कदाचित् शब्द और वस्तुमें विशेषण-विशेष्यभाव मानकर यदि शब्दको वस्तुका धर्म स्वीकार करे तो यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, विशेष्यसे भिन्न विशेषण नहीं होता; कारण कि ऐसा माननेमें अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है । अत एव शब्द वस्तुका धर्म न होनेसे उसके भेदसे अर्थका भेद नहीं हो सकता ? >

ʿसमाधान७< यह कोई दोष नहीं है, विशेष्यसे भिन्न भी वस्त्राभरणादिकोंके विशेषणता पायी जाती है । और विशेष्यसे विशेषणको सर्वथा एक माननेपर उनमें व्यवच्छेद्य-व्यवच्छेदकभाव मानना भी योग्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, अभेद माननेपर उसका >

छक्खंडागमे वेयणाखंडं

ʿधात् । न स्वतो व्यतिरिक्ताशेषार्थव्यवच्छेदका शब्दः, अयोग्यत्वात् । योग्यः शब्दो योग्यार्थस्य व्यवच्छेदक इति नातिप्रसंग आढौकते । कुतो योग्यता शध्दार्थानाम् ? स्वपराभ्याम् । न चैकान्तेनान्यत एव तदुत्पत्तिः, स्वतो विवर्तमानानामर्थानां सहायत्वेन वर्तमानबाह्यार्थोपलम्भात् । न च शब्दयोर्द्वैविध्ये तत्सामर्थ्ययोरेकत्वं न्याय्यम, भिन्नकालोत्पन्नद्रव्योपादानभिन्नाधारयोरेकत्वविरोधात् । न च सादृश्यमपि, तयोरेकत्वापत्तेः । ततो वाचकभेदादवश्यं वाच्यभेदेनापि भवितव्यमिति नानार्थभिरूढः समभिरूढः (१ शब्दभेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनाप्यवश्यं भवितव्यमिति नानार्थसमभिरोह्णात् समभिरूढः। स.सि. १, ३३. त. रा.१, ३३, १०.)। एवं समभिरूढनयस्वरूपमभिहितम् ।७

ʿवाचकगतवर्णभेदेनार्थस्य गवाद्यर्थभेदेन गवादिशब्दस्य च भेदकः एवम्भूतः (२ ष.खं. पु. १, पृ. ९०. जयध. १, पृ.२४२.)। क्रियाभेदे न अर्थभेदकः एवम्भूतः, शब्दनयानतर्भूतस्य एवम्भूतस्य अर्थनयत्वविरोधात् ।

< विरोध है । शब्द अपनेसे भिन्न समस्त पदार्थोका व्यवच्छेदक नहीं हो सकता, क्योंकि, उसमें वैसी योग्यता नहीं है । किन्तु योग्य शब्द योग्य अर्थका व्यवच्छेदक होता है, अत एव अति प्रसंग नहीं आता । >

ʿशंका- < शब्द और अर्थके योग्यता कहांसे आती है ? >

ʿसमाधान- < स्व और परसे उनके योग्यता आती है । >

< सर्वथा अन्यसे ही उसकी उत्पत्ति होती हो ऐसा है नहीं, क्योंकि, स्वयं वर्तनेवाले पदार्थोकी सहायतासे वर्तते हुए बाह्य पदार्थ पाये जाते हैं । दूसरे, शब्दोंके दो प्रकार होनेपर उनकी शक्तियोंको एक मानना भी उचित नहीं है, क्योंकि, भिन्न कालमें उत्पन्न व भिन्न उपादान एवं भिन्न आधरवाली शब्दशक्तियोंके अभिन्न होनेका विरोध है । उनमें सादृश्य भी नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा होनेपर एकताकी आपत्ति आती है । इस कारण वाचकके भेदसे वाच्यभेद भी आवश्य होना चाहिये । अत एव शब्दभेदसे नाना अर्थोमें जो रूढ है वह समभिरूढ नय है, यह सिध्द है । इस प्रकार समभिरूढ नयका स्वरूप कहा गया है । >

< जो शब्दगत वर्णोके भेदसे अर्थका और गौ आदि अर्थके भेदसे गो आदि शब्दका भेदक है वह एवम्भूत नय है । क्रियाका भेद होनेपर एवम्भूत नय अर्थका नहीं है, क्योंकि, शब्दनयके अन्तर्गत एवम्भूत नयके अर्थनय होनेका विरोध है । >

ʿशंका- < अर्थनय कौन है ? >